Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com

ISSN:2584-105X **Pg. 134-141**

भारत में घरेलू हिंसा और कानून: समाजशास्त्रीय, न्यायिक और नीतिगत परिप्रेक्ष्य का एक विश्लेषण

गीता
शोधकर्ता, LLM, UGC-NET
कानून संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
geetakm2025@gmail.com

Accepted: 17/11/2025
Published: 23/11/2025 ***DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.17689343***

सारांश

घरेलू हिंसा (डोमेस्टिक वायलेंस) आधुनिक भारतीय समाज में एक गम्भीर और व्यापक समस्या है, जिसके प्रतिकार हेतु भारतीय विधि-निर्माताओं ने विशेष क़ानूनी प्रावधान बनाए हैं। इस शोधपत्र में भारत में घरेलू हिंसा के प्रति विधिक प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया गया है, जिसमें मुख्यतः भारतीय दंड संहिता की धारा 498क (दहेज उत्पीड़न/क्रूरता का अपराध) और घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 के प्रावधानों पर केंद्रित विवेचना शामिल है। शोध में 2005 से 2025 तक की अवधि में इन कानूनों के विकास, न्यायालयों के दृष्टिकोण तथा उनके सामाजिक प्रभावों का अवलोकन किया गया है। अध्ययन से पता चलता है कि भारत में महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा की घटनाएँ बड़ी संख्या में मौजूद हैं और लगभग एक-तिहाई विवाहित महिलाओं को अपने जीवनकाल में कभी न कभी पति या पारिवारिक सदस्यों द्वारा शारीरिक या मानसिक हिंसा का सामना करना पड़ा है। कानूनों के अस्तित्व के बावजूद पीड़ितों को न्याय दिलाने तथा दोषियों को दंडित करने में कई चुनौतियाँ रही हैं। न्यायपालिका ने समय-समय पर इन कानूनों की व्याख्या करते हुए उनके दुरुपयोग की प्रवृत्तियों पर चिंता जताई है, फिर भी इन प्रावधानों को महिलाओं की रक्षा हेतु अपरिहार्य माना है। यह शोधपत्र घरेलू हिंसा के सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों, विधिक ढाँचे, न्यायिक निर्णयों और क्रियान्वयन से जुड़ी बाधाओं का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। निष्कर्षतः, प्रभावी कानूनी प्रवर्तन, सामाजिक जागरूकता एवं नीति-स्तरीय सुधारों के माध्यम से ही घरेलू हिंसा की समस्या का निराकरण संभव है।

प्रमुख शब्द: *घरेलू हिंसा, धारा 498क, घरेलू हिंसा अधिनियम 2005, महिला अधिकार, न्यायिक प्रवृत्तियाँ, नीति विश्लेषण*

परिचय:

घरेलू हिंसा परिवार तथा निकट संबंधों के भीतर घटित होने वाला हिंसात्मक आचरण है, जो मुख्यतः महिलाओं को शिकार बनाता है। इसमें शारीरिक आक्रमण, भावनात्मक या मानसिक उत्पीड़न, यौनिक हिंसा तथा आर्थिक शोषण जैसे कई स्वरूप शामिल हैं। भारत जैसे पारंपरिक समाज में ऐतिहासिक रूप से घरेलू हिंसा को निजी पारिवारिक मामला समझकर अक्सर अनदेखा किया जाता था। किन्तु स्वतंत्रता पश्चात महिला अधिकारों के बढ़ते विमर्श और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों के प्रभावस्वरूप घरेलू हिंसा को एक सार्वजनिक महत्व के अपराध एवं लैंगिक न्याय के मुद्दे के रूप में मान्यता मिली। आज घरेलू हिंसा को महिलाओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन तथा लैंगिक असमानता का द्योतक माना जाता है।

भारत में घरेलू हिंसा की व्यापकता चिंताजनक है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS) तथा अन्य अध्ययनों ने दर्शाया है कि बड़ी संख्या में महिलाओं को वैवाहिक जीवन में किसी न किसी रूप में हिंसा सहनी पड़ती है। उदाहरणस्वरूप, एनएफएचएस-5 (2019-21) के अनुसार 18-49 वर्ष आयु वर्ग की लगभग **29%** महिलाओं ने अपने जीवनकाल में पति या साथी द्वारा शारीरिक हिंसा का अनुभव किया है[1]। इसके अतिरिक्त, काफी महिलाओं को मानसिक एवं यौनिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है, यद्यपि इनमें से बहुत कम मामलों की औपचारिक शिकायत दर्ज हो पाती है। सामाजिक बदनामी, परिवार विघटन का भय, आर्थिक निर्भरता तथा कानून प्रवर्तन में अविश्वास जैसी वजहों से अनेक पीड़ित महिलाएँ आवाज़ उठाने से हिचकिचाती हैं।

इस सामाजिक वास्तविकता ने राज्य को हस्तक्षेप कर पीड़ितों को संरक्षण देने हेतु विधिक उपाय अपनाने को प्रेरित किया। स्वतंत्र भारत के आरंभिक दशकों में महिलाओं के विरुद्ध घरेलू अत्याचार का सामना भारतीय दंड संहिता, 1860 (आईपीसी) की सामान्य धाराओं (जैसे चोट, मारपीट, हत्या आदि) और वैवाहिक विवादों में दीवानी उपायों (जैसे हिंदू विवाह अधिनियम के तहत तलाक या भरण-पोषण) के माध्यम से ही किया जाता था। किन्तु घरेलू हिंसा की विशिष्ट प्रकृति और दहेज-सम्बन्धी उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं ने विशेष दंड कानून की आवश्यकता को उजागर किया। परिणामस्वरूप 1983 में दंड विधि में संशोधन कर आईपीसी की धारा **498क (498A)** सम्मिलित की गई, जो विवाहिता के प्रति उसके पति या ससुरालजन द्वारा किये गए "क्रूरतापूर्ण" व्यवहार को आपराधिक कृत्य घोषित करती है[2]। यह प्रावधान घरेलू क्षेत्र में होने वाली हिंसा को दंडनीय बनाने की दिशा में पहला ठोस कदम था।

हालाँकि आईपीसी की धारा 498क मुख्यतः दहेज की माँग को लेकर होने वाली क्रूरता और उत्पीड़न पर केंद्रित है। समय के साथ यह महसूस किया गया कि घरेलू हिंसा केवल दहेज तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके अन्य भी कई रूप हैं जिनके लिए व्यापक संरक्षण-कानून की आवश्यकता है। इस जरूरत को पूरा करने के लिए भारतीय संसद ने **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005** पारित किया, जो 26 अक्टूबर 2006 से देशभर में प्रभावी हुआ। यह अधिनियम पीड़ित महिलाओं को त्वरित सिविल राहतें (जैसे संरक्षण आदेश, निवास का अधिकार, भरण-पोषण, क्षतिपूर्ति आदि) प्रदान करने के उद्देश्य से बनाया गया एक प्रगतिशील कानून है[3]। इस शोधपत्र में उपर्युक्त दोनों प्रमुख विधिक उपकरणों – आईपीसी की धारा 498क और 2005 के संरक्षण अधिनियम – की विस्तारपूर्वक समीक्षा की गई है तथा 2005 से 2025 तक इनसे जुड़े न्यायिक व्याख्याओं, सामाजिक प्रभावों और कार्यान्वयन की स्थितियों का विश्लेषण किया गया है।

भारत में घरेलू हिंसा संबंधी कानूनी ढाँचा:

धारा 498क, भारतीय दंड संहिता (पति या उसके रिश्तेदार द्वारा क्रूरता)

भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, जो 1983 में एक संशोधन द्वारा जोड़ी गई, विवाहिता के प्रति पति अथवा उसके रिश्तेदारों द्वारा की जाने वाली "क्रूरता" को एक संगीन दंडनीय अपराध घोषित करती है। कानून के तहत "क्रूरता" की परिभाषा दो प्रमुख भागों में दी गई है:
(क) कोई भी ऐसा जानबूझकर किया गया आचरण जो स्त्री को आत्महत्या के लिए उकसा सके या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य (शारीरिक या मानसिक) को गंभीर क्षति या ख़तरे में डाले; तथा
(ख) स्त्री का उत्पीड़न, जहाँ वह उत्पीड़न इस आशय से किया जाए कि स्त्री या उसके परिजन से किसी अवैधानिक धन या संपत्ति की माँग पूरी करवाई जा सके, या ऐसी माँग पूरी न होने पर उसे प्रताड़ित किया जाए।

यह धारा एक संज्ञेय (कॉग्निज़ेबल) तथा गैर-जमानती अपराध को परिभाषित करती है, जिसकी सज़ा **तीन वर्ष तक का कारावास** और जुर्माना हो सकती है। इस प्रावधान को शामिल करने का मुख्य उद्देश्य दहेज हेतु होने वाले अत्याचारों और विवाहिता के साथ आत्महत्या के लिए

[1] राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (2019-21) के आँकड़े: भारत में 18-49 वर्ष आयु वर्ग की लगभग 29% महिलाओं ने अपने पति/साथी द्वारा शारीरिक हिंसा का सामना किया है।

[2] आपराधिक विधि (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1983 (क्र. 46 सन् 1983) द्वारा भारतीय दंड संहिता में धारा 498क सम्मिलित की गई।

[3] संसद द्वारा अधिनियमित **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005** को संयुक्त राष्ट्र CEDAW समिति की सिफ़ारिशों के अनुपालन में बनाया गया (अधिनियम की प्रस्तावना में उल्लिखित उद्देश्य)।

उकसाने या मारपीट जैसी घटनाओं पर नियंत्रण करना था। 1980 के दशक की शुरुआत में देश में दहेज से जुड़ी हिंसा तथा दहेज मृत्यु के मामलों में वृद्धि देखी गई थी। उस समय **दहेज निषेध अधिनियम, 1961** होने के बावजूद दहेज की कुरीति और उससे जनित उत्पीड़न जारी था और अनेक नवविवाहिताएं प्रताड़ना का शिकार हो रही थीं। ऐसे में आईपीसी की धारा 498क एक अत्यावश्यक प्रतिशोधक प्रावधान के रूप में लाई गई जिसने वैवाहिक क्रूरता को पहली बार विशिष्ट आपराधिक श्रेणी का दर्जा दिया।

498क के अंतर्गत पुलिस को प्राप्त त्वरित गिरफ्तारी के अधिकार तथा अपराध की गम्भीरता ने प्रारंभ में इसे पीड़ित महिलाओं के लिए एक सशक्त हथियार बनाया। अनेक मामलों में इस धारा के तहत शिकायतें दर्ज कर दोषियों को सज़ा हुई, जिससे दहेज उत्पीड़न के विरुद्ध कड़ा संदेश गया। इसके अतिरिक्त, दंड प्रक्रिया संहिता में **धारा 198A** जोड़ी गई, जिसके अनुसार 498क के तहत महिला स्वयं या उसका निकट रिश्तेदार शिकायत दर्ज करा सकता है – यह प्रावधान इसलिए अहम था ताकि पीड़िता यदि दबाव में न आ पाए तो उसका परिवार उसकी ओर से न्यायालय की शरण ले सके।

498क के अलावा, दहेज-संबंधित गंभीर परिणामों से निपटने हेतु अन्य प्रावधान भी जोड़े गए, जैसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम में **धारा 113B** (दहेज मृत्यु पर प्रतीत्य धारणा) तथा आईपीसी में **धारा 304B** (दहेज मृत्यु) को 1986 में सम्मिलित किया गया। इन प्रावधानों ने मिलकर विवाहिता की संदिग्ध मृत्यु या आत्महत्या की स्थिति में अभियोजन की पकड़ मज़बूत की। इस प्रकार आईपीसी की धारा 498क भारतीय आपराधिक न्याय व्यवस्था में घरेलू हिंसा के खिलाफ बुनियादी कानूनी ढांचा प्रदान करती है।

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005

2005 में पारित **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम** (संक्षेप में पीडब्लूडीवीए, 2005) घरेलू हिंसा के परिप्रेक्ष्य में भारतीय विधि का एक मील का पत्थर था। यह क़ानून, संविधान के अनुच्छेद 15(3) के अनुरूप, महिलाओं के लिए विशेष विधिक प्रावधान बनाते हुए परिवार के भीतर हो रही हिंसा को रोकने हेतु बनाया गया है[4]। इस अधिनियम की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसने पहली बार भारतीय कानून में "घरेलू हिंसा" की व्यापक परिभाषा प्रदान की। अधिनियम की धारा 3 के अनुसार घरेलू हिंसा में शामिल हैं: शारीरिक चोट पहुंचाना, यौनिक दुर्व्यवहार (जिसमें वैवाहिक बलात्कार भी शामिल माना गया है), मौखिक/भावनात्मक गाली-गलौज तथा आर्थिक नुकसान या प्रतिबंध। दहेज की मांग को लेकर किया गया उत्पीड़न अथवा पुरुष संतान ना होने पर तानों द्वारा दिया गया मानसिक कष्ट भी घरेलू हिंसा के अंतर्गत परिभाषित है।

यह अधिनियम मुख्य रूप से पीड़ित महिलाओं को आपराधिक न्याय प्रणाली की धीमी व दंडात्मक प्रकृति के समानांतर एक त्वरित सिविल उपचार प्रदान करने के लिए निर्मित हुआ है। पीड़िता इस कानून के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन देकर संरक्षण, निवास, भरण-पोषण, क्षतिपूर्ति एवं बच्चों की अभिरक्षा जैसे विभिन्न आदेश प्राप्त कर सकती है। कानून के प्रभावी अमल के लिए प्रत्येक ज़िले में *संरक्षण अधिकारी* नियुक्त किए जाते हैं और वे पीड़िता को सुरक्षा, शिकायत दर्ज कराने, चिकित्सा तथा आश्रय की सुविधाएँ दिलाने में सहायक होते हैं। साथ ही, अधिनियम के तहत पंजीकृत स्वयंसेवी संस्था को 'सेवा प्रदाता' का दर्जा दिया जाता है, जो कानूनी कार्यवाही में पीड़िता की मदद कर सकती है। राज्य सरकारों पर इस कानून के प्रावधानों का व्यापक प्रचार-प्रसार करने की जिम्मेदारी भी डाली गई है, ताकि पीड़ित महिलाएँ अपने अधिकारों से भली-भांति अवगत रहें। यदि प्रताड़ना जारी रहती है या प्रतिवादी न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन करता है, तो अधिनियम की धारा 31 के अनुसार ऐसा उल्लंघन स्वयं एक दंडनीय अपराध होगा, जिसमें **एक वर्ष तक का कारावास** तक हो सकता है। इस प्रकार पीडब्लूडीवीए, 2005 एक ऐसा समग्र विधान है जो घरेलू हिंसा पीड़िता को न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा त्वरित संरक्षण दिलाने का प्रयास करता है, तथा यह कानून के सिविल और क्रिमिनल दृष्टिकोण के बीच पुल का कार्य करते हुए पीड़िता की सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह अधिनियम भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर किए गए दायित्वों की पूर्ति का हिस्सा भी है। संयुक्त राष्ट्र के "महिला के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन" (सीईडीएडब्ल्यू) की समिति ने सदस्य राष्ट्रों को घरेलू हिंसा के विरुद्ध कारगर कानून बनाने की सिफ़ारिश की थी। पीडब्लूडीवीए, 2005 को उन सिफारिशों के आलोक में ही अधिनियमित किया गया, और इसे सीईडीएडब्ल्यू की सामान्य अनुशंसा संख्या 19 (1992) के सिद्धांतों के अनुरूप माना जाता है[5]। इस प्रकार भारत का घरेलू हिंसा-विरोधी कानून वैश्विक मानकों के साथ तालमेल रखते हुए लैंगिक न्याय की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण क़दम है।

न्यायिक प्रवृत्तियाँ एवं कानूनी व्याख्याएँ:

किसी भी कानून की प्रभावशीलता काफी हद तक न्यायपालिका द्वारा उसकी व्याख्या और क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। विगत दो दशकों में भारतीय उच्च न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय ने आईपीसी की धारा 498क तथा

[4] संसद द्वारा अधिनियमित **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005** को संयुक्त राष्ट्र CEDAW समिति की सिफ़ारिशों के अनुपालन में बनाया गया (अधिनियम की प्रस्तावना में उल्लिखित उद्देश्य)।

[5] संसद द्वारा अधिनियमित **घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005** को संयुक्त राष्ट्र CEDAW समिति की सिफ़ारिशों के अनुपालन में बनाया गया (अधिनियम की प्रस्तावना में उल्लिखित उद्देश्य)।

पीडब्लूडीवीए, 2005 दोनों के संदर्भ में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय दिए हैं, जिन्होंने इन प्रावधानों के दायरे, सीमा और दुरुपयोग की रोकथाम के उपायों को स्पष्ट किया है।

धारा 498क से जुड़े न्यायिक दृष्टांत:

498क आईपीसी के संदर्भ में न्यायालयों का रूख प्रारंभ में अत्यंत कड़ा और पीड़ित-पक्षीय रहा। **सुशील कुमार शर्मा बनाम भारत संघ (2005)** में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 498क की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने वाली याचिका पर निर्णय देते हुए कानून को बरकरार रखा, साथ ही टिप्पणी की कि "इस प्रावधान के दुरुपयोग से एक प्रकार का **'कानूनी आतंकवाद'** उत्पन्न हो सकता है" यदि इसे हथियार बनाकर झूठे मामले दायर किए जाएँ[6]। न्यायालय ने कहा कि कुछ मामलों में दुरुपयोग की संभावना मात्र से कानून को निरस्त नहीं किया जा सकता, बल्कि वास्तविक दोषियों को दंडित करने के लिए इसका बने रहना आवश्यक है। इस प्रकार अदालत ने संतुलन बनाते हुए भविष्य में इसके दुरुपयोग पर अंकुश रखने की बात भी रेखांकित की।

वर्ष 2014 के ऐतिहासिक फ़ैसले **अर्णेश कुमार बनाम बिहार राज्य** में सर्वोच्च न्यायालय ने 498क के मामलों में तत्काल गिरफ्तारी की प्रवृत्ति पर रोक लगाने हेतु विस्तृत दिशानिर्देश जारी किए[7]। अदालत ने पाया कि कई बार मामूली पारिवारिक कलह को भी धारा 498क के तहत आपराधिक मामला बना दिया जाता है और पुलिस बिना उचित जाँच-पड़ताल के पति या ससुरालवालों को गिरफ़्तार कर लेती है, जिससे निर्दोष लोगों को उत्पीड़न झेलना पड़ता है। न्यायालय ने आदेश दिया कि 498क तथा अन्य ऐसे अपराध जिनकी सज़ा 7 वर्ष से कम है, उनमें पुलिस गिरफ्तारी से पूर्व दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 में निर्दिष्ट शर्तों का पालन करे; अर्थात् गिरफ्तारी तभी हो जब आवश्यक हो, अन्यथा नोटिस देकर सहयोग के लिए बुलाया जाए। साथ ही मजिस्ट्रेटों को भी निर्देश दिया गया कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत कारणों का मूल्यांकन किए बिना रिमांड स्वीकार न करें। इन निर्देशों का उद्देश्य दुरुपयोग की आशंकाओं को कम करना और अभियुक्तों को अनावश्यक हिरासत से बचाना था, जिसका दूरगामी प्रभाव 498क मामलों की पुलिस कार्यप्रणाली पर पड़ा।

राजेश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) में शीर्ष अदालत ने 498क के बढ़ते दुरुपयोग के मद्देनज़र कुछ और असाधारण उपाय प्रस्तावित किए। न्यायालय ने प्रत्येक ज़िले में एक **पारिवारिक कल्याण समिति** गठित करने का निर्देश दिया, जिसका कार्य 498क की प्राप्त शिकायतों की प्रारम्भिक जाँच करना तथा अपनी रिपोर्ट के आधार पर आगे की पुलिस कार्रवाई की संस्तुति देना था। इसके अनुसार, शिकायत दर्ज होने के बाद तुरंत एफआईआरदर्ज करने या गिरफ्तारी करने के बजाय मामला पहले समिति के पास भेजा जाना था, ताकि झूठे मामलों को छन्टा जा सके। न्यायालय ने यह भी निर्देश दिए कि आरोपितों की तुरंत गिरफ्तारी न हो; यदि पति सरकारी कर्मचारी है तो उसके विरुद्ध विभागीय कार्रवाई गिरफ्तारी से पूर्व न हो; आदि सुरक्षात्मक उपाय अपनाए जाएँ[8]। इन दिशा-निर्देशों को कुछ समय के लिए देशभर में लागू किया गया। हालाँकि, इन प्रावधानों की यह कहते हुए व्यापक आलोचना हुई कि न्यायालय ने कार्यपालिका क्षेत्र में अतिक्रमण कर दिया है और ऐसे सामूहिक समितियों की व्यवस्था वास्तविक पीड़िताओं के न्याय पाने में विलंब का कारण बन सकती है। परिणामतः अगले ही वर्ष **मानव अधिकार के लिए सोशल एक्शन फोरम बनाम भारत संघ (2018)** में सुप्रीम कोर्ट की तीन-सदस्यीय पीठ ने 2017 के निर्देशों की समीक्षा करते हुए अधिकांश अतिरिक्त प्रावधानों को हटा दिया। न्यायालय ने माना कि परिवार कल्याण समिति जैसी व्यवस्था भारतीय दंड प्रक्रिया में अतिरिक्त बाधा डालती है और कोर्ट के आदेश से ऐसी संस्था गठित करना विधिसम्मत नहीं है। अतः 2018 के फैसले में पूर्ववर्ती निर्देशों को संशोधित करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि 498क मामलों को अनिवार्य रूप से समिति के पास भेजना आवश्यक नहीं, तथा अभियुक्त चाहे तो अग्रिम ज़मानत का लाभ ले सकता है[9]। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने संतुलनकारी रुख अपनाते हुए कानून के दुरुपयोग की रोकथाम के उपाय तो कायम रखे, पर साथ ही यह भी सुनिश्चित किया कि वास्तविक मामलों में पीड़िता को न्याय पाने में अनावश्यक विलंब न हो।

पिछले कुछ वर्षों में न्यायपालिका ने 498क के प्रसंग में कुछ अहम टिप्पणियाँ की हैं, जो निचली अदालतों हेतु मार्गदर्शक सिद्ध हुई हैं। उदाहरणस्वरूप, **संजीव कुमार बनाम हरियाणा राज्य (2021)** तथा **कहकशां कौसर बनाम बिहार राज्य (2022)** जैसे प्रकरणों में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि पत्नी के परिजनों को केवल नामज़द कर देना, बिना ठोस आरोपों के, न्याय प्रक्रिया का दुरुपयोग है; ऐसे फ़र्ज़ी मुकदमों

[6] **सुशील कुमार शर्मा बनाम भारत संघ**, (2005) 6 SCC 281: सुप्रीम कोर्ट ने 498क के दुरुपयोग की संभावना को "नए प्रकार के कानूनी आतंकवाद" की संज्ञा दी, किन्तु कानून को रद्द करने से इनकार किया।

[7] **अर्णेश कुमार बनाम बिहार राज्य**, (2014) 8 SCC 273: सुप्रीम कोर्ट ने 498क में गिरफ्तारी हेतु CrPC धारा 41 की शर्तों के अनुपालन के निर्देश दिए; अनावश्यक गिरफ़्तारियों पर रोक संबंधी दिशानिर्देश जारी किए।

[8] **राजेश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, AIR 2017 SC 3869: सुप्रीम कोर्ट ने 498क मामलों की जाँच के लिए ज़िला स्तरीय परिवार कल्याण समितियाँ बनाने व तुरंत गिरफ्तारी न करने समेत कई निर्देश प्रतिपादित किए।

[9] **Social Action Forum for Manav Adhikar बनाम भारत संघ**, (2018) 10 SCC 443: सुप्रीम कोर्ट ने 2017 में गठित परिवार कल्याण समितियों से संबंधित पूर्व दिशा-निर्देशों को संशोधित/निरस्त कर दिया; अभियुक्तों को अग्रिम ज़मानत का अधिकार वापस स्पष्ट किया।

को प्रारम्भिक चरण में ही निरस्त किया जाना चाहिए[10]। दूसरी तरफ़, **मीरा बनाम राज्य (2022)** में अदालत ने रेखांकित किया कि यदि वास्तव में सास द्वारा बहू के साथ क्रूरता हुई हो तो दोषिनी सास कोई रियायत पाने योग्य नहीं है, क्योंकि 'एक स्त्री द्वारा अपनी बहू पर अत्याचार करना और भी अधिक गम्भीर अपराध है'। इन न्यायिक दृष्टांतों से स्पष्ट होता है कि उच्चतम न्यायालय 498क की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी उसके दुरुपयोग को लेकर सचेत है और आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप कर फ़र्ज़ी मामलों को ख़ारिज करने अथवा अभियुक्तों को राहत देने में संकोच नहीं करता। वहीं जहां वास्तविक क्रूरता सिद्ध होती है, वहाँ अदालतें दोषियों को सज़ा देने में कठोर रुख अपनाती हैं।

498क संबंधी अभियोजन के आँकड़ों पर नज़र डालें तो एक विरोधाभास दिखता है: इन मामलों में **दोषसिद्धि दर** राष्ट्रीय स्तर पर काफी कम – लगभग 15% के आसपास – रही है[11]। एक ओर इसका कारण यह है कि कई मामलों में मुक़दमे के दौरान पति-पत्नी के बीच सुलह हो जाती है या साक्ष्य पुख्ता नहीं मिल पाते, तो दूसरी ओर यह आँकड़ा कुछ हद तक निराधार शिकायतों की मौजूदगी की ओर भी संकेत करता है। उदाहरणतः दिल्ली के ज़िला न्यायालयों से प्राप्त RTI आँकड़ों के अनुसार 2021-24 में वहाँ 498क के निष्पादित मामलों में दोषसिद्धि केवल **0.2%** मामलों में हुई। लगभग 47% मामलों में दिल्ली उच्च न्यायालय ने आरोप निरस्त कर दिए, और बाक़ी में अधिकांश अभियुक्त बरी हुए, मात्र 23 मामलों में सज़ा हो सकी[12]। इन तथ्यों को कुछ समूह 498क के दुरुपयोग का प्रमाण मानते हैं, क्योंकि उनके अनुसार अधिकतर केस अदालत में टिक नहीं पाते। दूसरी ओर महिला अधिकार कार्यकर्ताओं का तर्क है कि कम दोषसिद्धि दर का यह मतलब नहीं कि सारे मामले झूठे हैं; बल्कि घरेलू हिंसा जैसे अपराधों में सबूत जुटाना स्वयं कठिन होता है, सामाजिक दबाव में कई महिलाएँ गवाही से मुकर जाती हैं या परिवार के दबाव में समझौता कर लेती हैं। निष्कर्षतः, न्यायिक रुझानों से दो तथ्य उभरते हैं: (1) न्यायालयें 498क की ज़रूरत को स्वीकार करती हैं पर उसके दुरुपयोग को रोकने हेतु उपाय भी सुझाती/अपनाती हैं; और (2) मुकदमों के लम्बे और जटिल प्रक्रिया में फँसने से पहले ही बड़ी संख्या में मामले सुलह या ख़ारिजी के कारण समाप्त हो जाते हैं, जो कई पीड़ितों और अभियुक्तों – दोनों के लिए अधूरी न्याय की स्थिति है।

घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 से जुड़े न्यायिक दृष्टांत:

पीडब्लूडीवीए, 2005 के लागू होने के बाद न्यायालयों ने इसके विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या द्वारा पीड़ित महिलाओं को काफ़ी राहत दी है। जैसा पूर्वोक्त है, 2016 में **हिरल प. हर्सोरा बनाम कुसुम नरोटम्मदास हर्सोरा** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अधिनियम की धारा 2(q) में से "वयस्क पुरुष" शब्द को असंवैधानिक पाते हुए हटा दिया, जिससे अब महिला प्रताड़कों (जैसे सास, ननद) को भी प्रतिवादी बनाया जा सकता है[13]। इस व्याख्या ने कानून के दायरे को विस्तार देकर कई बहुओं को अपनी सास/ननद आदि के विरुद्ध भी संरक्षण आदेश पाने का मार्ग प्रशस्त किया।

इसी प्रकार, अधिनियम की धारा 17 के तहत पीड़िता को अपने "संयुक्त आवास" में रहने का अधिकार दिया गया है। प्रारम्भ में इस अधिकार की सीमा को लेकर विवाद था, विशेषकर तब जब घर का मालिकाना हक़ पति के स्थान पर ससुर या किसी अन्य का हो। **एस.आर. बत्रा बनाम तरूण बत्रा (2007)** में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया था कि यदि साझा आवास वह मकान है जो पति के स्वामित्व/कब्ज़े में नहीं है बल्कि किसी और रिश्तेदार (जैसे ससुर) की निजी संपत्ति है, तो पत्नी को वहाँ रहने का अधिकार नहीं मिलेगा। इस फैसले की आलोचना हुई क्योंकि इससे कई पीड़िताएँ आवास अधिकार से वंचित हो गईं। अंततः अक्टूबर 2020 में **सतीश चंद्र आहुजा बनाम स्नेहा आहुजा** के महत्वपूर्ण निर्णय में तीन-न्यायाधीश पीठ ने *बत्रा बनाम बत्रा* को पलटते हुए धारा 2(s) का व्यापक अर्थ निकाला। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि "संयुक्त आवास" की परिभाषा सर्वांगीण है और किसी संपत्ति को साझा गृहस्थान मानने के लिए यह दिखाना काफ़ी है कि वह संपत्ति उस प्रतिवादी (पति अथवा ससुर इत्यादि) की है जिसके विरुद्ध महिला ने मामला दायर किया है, और पीड़िता ने वैवाहिक सम्बन्ध के दौरान उस घर में कुछ अवधि निवास किया है। पीड़िता का उस संपत्ति में स्वामित्व या किरायेदारी होना आवश्यक नहीं; साथ ही यदि घर संयुक्त परिवार का है जिसका प्रतिवादी सदस्य है तो भले ही पीड़िता का कानूनी हक़ न हो, वह घर साझा आवास माना जाएगा[14]। इस निर्णय

[10] **SCC Online**, *"Section 498-A IPC: A Double-Edged Sword — Protecting Dignity or Enabling Misuse?"* (ब्लॉग, 30 जून 2025): सुप्रीम कोर्ट के 2021-24 के निर्णयों का संकलन, जिनमें 498क के दुरुपयोग की प्रवृत्ति रोकने हेतु महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ शामिल हैं।

[11] राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, *क्राइम इन इंडिया* रिपोर्ट 2023: महिलाओं के विरुद्ध अपराधों में "पति या उसके रिश्तेदार द्वारा क्रूरता" (धारा 498क IPC) के 1,33,676 मामले दर्ज हुए, जो कुल दर्ज *क्राइम अगेंस्ट वीमेन* का सबसे बड़ा हिस्सा थे।

[12] **विनीत उपाध्याय**, *"Debate Over 498A Misuse Grows Louder"*, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (दिल्ली संस्करण), 15 जून 2025: दिल्ली की अदालतों में 2021-24 के दौरान 498क के मुकदमों में मात्र 0.2% मामलों में दोषसिद्धि, लगभग आधे मामलों में आरोप उच्च न्यायालय द्वारा रद्द; 498क को समझौता-योग्य बनाने जैसे सुधारों पर चर्चा।

[13] **Hiral P. Harsora बनाम कुसुम नरोटम्मदास हर्सोरा**, (2016) 10 SCC 165: सुप्रीम कोर्ट ने PWDVA, 2005 की धारा 2(q) में से "वयस्क पुरुष" शब्द असंवैधानिक घोषित करते हुए हटा दिया; अब महिला रिश्तेदार भी प्रतिवादी बनाई जा सकती है।

[14] **सतीश चंद्र आहुजा बनाम स्नेहा आहुजा**, सिविल अपील नं. 2483/2020 (सुप्रीम कोर्ट; निर्णय: 15 अक्टूबर 2020): शीर्ष न्यायालय ने "shared household" की परिभाषा का विस्तृत पुनर्व्याख्या करते हुए पत्नी को ससुर के स्वामित्व वाले घर में भी

ने बहुओं के निवास अधिकार को मज़बूत किया और सुनिश्चित किया कि उन्हें ससुराल से बेघर नहीं किया जा सकेगा, चाहे घर किसके नाम पर हो।

अन्य पहलुओं पर भी उच्च न्यायालयों व सुप्रीम कोर्ट ने निर्देशात्मक टिप्पणियाँ की हैं। **इन्द्रा सरमा बनाम वी.के.वी. सरमा (2013)** में सर्वोच्च न्यायालय ने तय किया कि यदि एक स्त्री व पुरुष बिना विवाह के ऐसे स्थायी संबंध में रहें जो वैवाहिक संबंध जैसा हो, तो उस स्त्री को भी पीडब्लूडीवीए के तहत संरक्षण मिल सकता है, बशर्ते उनका संबंध पर्याप्त दीर्घकालिक और सार्वजनिक रूप से पति-पत्नी के रूप में माना गया हो[15]। इस फैसले ने लिव-इन संबंधों में रहने वाली महिलाओं को भी कानूनी सुरक्षा का दायरा दिया।

इसके अतिरिक्त, कई मामलों में अदालतों ने पीडब्लूडीवीए के क्रियान्वयन में कमियों पर चिंता जताई है। विशेष रूप से, **हम भारत की महिलाएं बनाम भारत संघ (2025)** नामक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने देशभर की राज्य सरकारों को कड़े निर्देश दिए कि वे अविलंब प्रत्येक ज़िले में पर्याप्त संख्या में संरक्षण अधिकारी नियुक्त करें, पंजीकृत सेवा प्रदाता संस्थाओं का नेटवर्क बनाएं, तथा आश्रयगृह एवं चिकित्सा सुविधा की उपलब्धता सुनिश्चित करें। न्यायालय ने पाया कि कानून के लागू होने के 15-20 वर्ष बाद भी कई राज्य इसकी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल हैं – जैसे कहीं नाममात्र के संरक्षण अधिकारी थे, या पीड़िताओं को पता ही नहीं कि शिकायत कहाँ दर्ज करनी है। मई 2025 में न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना की अगुवाई वाली पीठ ने सभी राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्य सचिवों को छह हफ्ते के भीतर ज़रूरी अधिकारियों की नियुक्ति करने और दस हफ्ते में प्रत्येक ज़िला व तालुका स्तर पर आश्रयगृह अधिसूचित करने का आदेश दिया। साथ ही राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा) को निर्देश दिया गया कि वह ज़िला और तहसील स्तर तक यह प्रचार-प्रसार करे कि घरेलू हिंसा पीड़िताओं को कानूनन निःशुल्क कानूनी सहायता व सलाह पाने का अधिकार है[16]। सुप्रीम कोर्ट का यह हस्तक्षेप पीडब्लूडीवीए के क्रियान्वयन को बल देने वाला अहम कदम है, जो दिखाता है कि कानून बनाना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उसे ज़मीनी स्तर पर प्रभावी करना भी उतना ही ज़रूरी है।

क्रियान्वयन की चुनौतियाँ एवं नीतिगत विश्लेषण:

मौजूदा कानूनी ढाँचे और न्यायिक सक्रियता के बावजूद भारत में घरेलू हिंसा उन्मूलन की राह में कई व्यावहारिक चुनौतियाँ बरकरार हैं। विधिक प्रावधान तब तक प्रभावी नहीं हो सकते जब तक उनका सही क्रियान्वयन और व्यापक सामाजिक स्वीकार्यता सुनिश्चित न की जाए:

पहली चुनौती जागरूकता की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर शहरी गरीब बस्तियों तक, आज भी बहुत सी महिलाओं को यह भली-भांति जानकारी नहीं है कि घरेलू हिंसा के विरुद्ध कानून मौजूद है या वे कानूनन क्या अधिकार प्राप्त कर सकती हैं। अशिक्षा और जागरूकता के अभाव में महिलाएँ पारिवारिक प्रताड़ना को अपनी नियति मानकर सहन करती रहती हैं। कानून के कड़े प्रावधानों का भय तभी अपराधियों में पैदा होगा जब पीड़िताओं को अपने अधिकारों का ज्ञान हो और वे शिकायत दर्ज कराने को प्रोत्साहित हों। इसलिए पीडब्लूडीवीए, 2005 में राज्य सरकारों को विधिक प्रावधानों के प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी दी गई है, लेकिन इस पर और प्रभावी कार्यवाही की आवश्यकता है।

दूसरी चुनौती सामाजिक एवं पारिवारिक दबाव है। अक्सर देखा गया है कि प्रारम्भ में महिला हिम्मत करके शिकायत तो दर्ज कराती है, किंतु बाद में परिवार के बड़ों या समाज की पंचायत आदि के दबाव से उसे मामला वापस लेने या समझौता करने पर मजबूर किया जाता है। आर्थिक निर्भरता या बच्चों के भविष्य की चिंता के चलते भी कई पीड़िताएं कानूनी लड़ाई बीच में छोड़ देती हैं और उत्पीड़क पति/परिवार से समझौता कर लेती हैं, भले ही शर्तें अन्यायपूर्ण हों। इस प्रवृत्ति के कारण बहुत से मामले अदालत में पहुंचे बिना ही ख़त्म हो जाते हैं और अपराधी दंड से बच जाते हैं।

तीसरी समस्या कानून लागू कराने वाली एजेंसियों की कार्यप्रणाली से जुड़ी है। 498क जैसे आपराधिक मामलों में पुलिस की भूमिका बेहद अहम है। अनेक स्थानों पर पुलिस ऐसे मामलों को "घरेलू मामला" बताकर टालने की कोशिश करती है या शिकायत दर्ज करने के बाद प्रभावी कार्रवाई नहीं करती। कहीं-कहीं भ्रष्टाचार या पक्षपात के कारण प्रभावशाली परिवार पुलिस कार्रवाई रुकवा लेते हैं। इसके विपरीत, पिछले दशकों में कुछ जगह पुलिस ने बिना जांच के पूरे ससुराल परिवार को गिरफ़्तार कर लिया था, जिसके विरुद्ध न्यायालय को हस्तक्षेप करना पड़ा (जैसा अर्णेश कुमार मामले में निर्देश आया)। इन दो अतियों – **निष्क्रियता** और **अति-सक्रियता** – के बीच संतुलन बनाना एक बड़ी चुनौती है। पुलिस और संरक्षण अधिकारियों को संवेदनशीलता तथा कानूनी प्रावधानों के उचित प्रयोग का प्रशिक्षण देना जरूरी है, ताकि वे न पीड़िता की शिकायत को

निवास अधिकार दिया; पूर्ववर्ती *बत्रा बनाम बत्रा (2007)* फैसला पलट दिया।

[15] **इन्द्रा सरमा बनाम वी.के.वी. सरमा**, (2014) 4 SCC 705: सुप्रीम कोर्ट ने निर्धारित किया कि कुछ परिस्थितियों में *लिव-इन रिलेशनशिप* में रह रही महिला भी घरेलू संबंध की श्रेणी में आकर PWDVA के तहत संरक्षण पाने की हकदार हो सकती है।

[16] **We The Women of India बनाम भारत संघ**, Writ Petition (Civil) No. 230/2021 (सुप्रीम कोर्ट; आदेश: 20 मई 2025): सुप्रीम कोर्ट ने सभी राज्य सरकारों को PWDVA के तहत पर्याप्त संरक्षण अधिकारी नियुक्त करने, सेवा प्रदाताओं/आश्रयगृहों की व्यवस्था करने और निःशुल्क विधिक सहायता के व्यापक प्रचार के निर्देश दिए; कानून के राष्ट्रव्यापी समुचित अनुपालन पर बल दिया।

नजरअंदाज करें, न ही बिना आधार सभी को अपराधी मान लें।

चौथी चुनौती न्यायिक प्रक्रिया में देरी और **प्रक्रियागत जटिलता** है। भारतीय न्यायालयों में मामलों के लंबित रहने की समस्या सर्वविदित है। दुर्भाग्यवश घरेलू हिंसा के मामले भी इस पीड़ादायक धीमी प्रक्रिया से अछूते नहीं हैं। पीडब्लूडीवीए के तहत सिद्धांततः मामला 60 दिनों में निपटाया जाना चाहिए, पर व्यवहार में अंतरिम राहत मिलने में भी कई बार महीनों लग जाते हैं और अंतिम आदेश आने में वर्षों। तब तक पीड़िता की परिस्थितियाँ बदल चुकी होती हैं या वह निराश होकर समझौता कर चुकी होती है। इसी प्रकार, 498क के आपराधिक मुकदमों में भी गवाहों-सबूतों के अभाव और अदालतों के बोझ के चलते फैसला आने में कई साल लग जाते हैं। *"न्याय में देरी, न्याय से वंचना के समान है"* – यह उक्ति खासकर घरेलू अत्याचार पीड़ितों के संदर्भ में सही है, क्योंकि उन्हें *तत्काल संरक्षण* की ज़रूरत होती है। न्यायिक प्रणाली को तेज़ व अधिक प्रभावी बनाना इन कानूनों की सफलता के लिए अनिवार्य है।

पाँचवाँ पहलू कानूनी प्रावधानों के दुरुपयोग बनाम उनके दुरुपयोग की धारणा से जुड़ा विवाद है, जिसने नीति-निर्माताओं को असमंजस में डाल रखा है। एक ओर महिला संगठनों की माँग है कि महिलाओं की सुरक्षा के कानून और मजबूत हों, दूसरी ओर कुछ पुरुष अधिकार समूह आईपीसी की धारा 498क को कमजोर करने या इसे जमानती व समझौता-योग्य बनाने की माँग करते हैं। इस द्वंद्व के बीच सरकार ने कुछ संतुलनकारी कदम उठाने की कोशिश की है। मसलन, विधि आयोग ने 2017 में सिफ़ारिश की थी कि 498क को समझौता-योग्य अपराध घोषित किया जा सकता है ताकि आपसी सुलह होने पर विवाह बच सके। केंद्र सरकार ने अब तक इसे लागू तो नहीं किया है (हालाँकि कुछ राज्यों ने अपने स्तर पर आंशिक अनुमति दी है), परंतु न्यायालयों ने भी विधायिका को इस पर विचार करने के सुझाव दिए हैं[17]। कुल मिलाकर, बिना कानून को हटाए या कमज़ोर किए, उसके दुरुपयोग रोकने के लिए सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देश (जैसे अग्रिम जमानत, तत्काल गिरफ्तारी न करना आदि) और सरकार द्वारा सलाह-पत्र जारी करना आदि उपाय अपनाए गए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि *कानून का दुरुपयोग रोकते हुए उसके सही उपयोग को प्रोत्साहन* दिया जाए, ताकि वास्तविक पीड़िताएँ न्याय से वंचित न हों।

छठीं व अंतिम चुनौती समाज में **महिला सशक्तिकरण के निम्न स्तर** से संबंधित है। क़ानून अपना काम तभी बख़ूबी कर पाएंगे जब सामाजिक वातावरण भी महिलाओं को हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए सक्षम बनाए। जब तक पितृसत्तात्मक सोच, लैंगिक भेदभाव और आर्थिक-सामाजिक निर्बलता जैसी गहरी जड़ें मौजूद हैं, तब तक केवल कानूनी उपाय पर्याप्त नहीं होंगे। अतः घरेलू हिंसा के उन्मूलन के लिए लंबे समय में शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, और लैंगिक समानता के मूल्यों का प्रसार ज़रूरी है। समुदाय और परिवार स्तर पर समर्थन मिलना भी उतना ही अहम है – पीड़िता को यदि परिवार का संबल मिले तो वह क़ानूनी अधिकार पाने के लिए आगे बढ़ सकती है। इसके लिए सरकार द्वारा *वन-स्टॉप सेंटर*, महिला हेल्पलाइन, नारी निकेतन जैसे संस्थागत उपाय भी चलाए जा रहे हैं, जिनका और विस्तार एवं समुचित क्रियान्वयन आवश्यक है।

तुलनात्मक दृष्टि:

घरेलू हिंसा के विरुद्ध दुनिया के अधिकतर देशों में कानून विद्यमान हैं, पर प्रत्येक देश में कानूनी दृष्टिकोण भिन्न है। कई देशों ने इस समस्या से निपटने के लिए सशक्त विशेष कानून बनाए हैं; जैसे ब्रिटेन का *घरेलू दुर्व्यवहार अधिनियम, 2021* और अमेरिका का *महिलाओं के खिलाफ हिंसा अधिनियम, 1994*, जिनमें घरेलू दुर्व्यवहार की व्यापक परिभाषाएँ और कठोर दंड प्रावधान शामिल हैं। अनेक देशों में पीड़िता को पुलिस के माध्यम से ही तुरंत एक प्रतिबंधक आदेश मिल जाता है, जबकि भारत में ऐसे आदेश के लिए न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाना पड़ता है।

एक प्रमुख अंतर **वैवाहिक बलात्कार (Marital Rape)** को अपराध मानने को लेकर है। विश्व के 150 से अधिक देशों ने वैवाहिक बलात्कार को आपराधिक कृत्य घोषित किया है[18]। इसके विपरीत, भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अपवाद अनुसार 18 वर्ष से अधिक आयु की पत्नी के साथ पति द्वारा बनाए गए जबरन यौन संबंध को बलात्कार नहीं माना जाता। हाल के वर्षों में इस अपवाद को हटाने पर ज़ोरदार बहस हुई है और उच्च न्यायालयों में मतभेदपूर्ण निर्णय भी आए हैं, पर संसद ने अब तक इसे नहीं बदला है। यद्यपि पीडब्लूडीवीए, 2005 के तहत *यौनिक हिंसा* की परिभाषा में वैवाहिक बलात्कार को शामिल किया गया है, जिससे पीड़िता को संरक्षण आदेश आदि मिल सकते हैं, किंतु दंड विधान में इसे अपराध न मानने की वजह से एक बड़ी सैद्धांतिक कमी बरक़रार है।

समग्रतः, भारत ने घरेलू हिंसा के विरुद्ध क़ानूनन काफी ठोस पहल की है और हमारे प्रावधान कई अंतरराष्ट्रीय मानकों की बराबरी करते हैं। फिर भी, कुछ पहलुओं में सुधार की

[17] **विनीत उपाध्याय**, *"Debate Over 498A Misuse Grows Louder"*, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (दिल्ली संस्करण), 15 जून 2025: दिल्ली की अदालतों में 2021-24 के दौरान 498क के मुकदमों में मात्र 0.2% मामलों में दोषसिद्धि, लगभग आधे मामलों में आरोप उच्च न्यायालय द्वारा रद्द; 498क को समझौता-योग्य बनाने जैसे सुधारों पर चर्चा।

[18] **Equality Now/Indian Express रिपोर्ट (2019)**: विश्व के 150 से अधिक देशों में वैवाहिक बलात्कार कानूनन अपराध माना गया है; भारत उन कुछ देशों में है जहाँ पति द्वारा ज़बरन यौन संबंध को अब भी बलात्कार के अपराध से छूट प्राप्त है।

गुंज़ाइश बाक़ी है। साथ ही, अन्य देशों की तुलना में यहाँ कानून के ज़मीनी अनुपालन और पीड़िता-सहायता तंत्र को और मज़बूत करने की आवश्यकता परिलक्षित होती है।

निष्कर्ष:

घरेलू हिंसा के विरुद्ध भारत की क़ानूनी लड़ाई मिश्रित सफलता और चुनौतियों की कहानी प्रस्तुत करती है। एक ओर, पिछले चार दशकों में लागू किए गए **आईपीसी की धारा 498क** तथा **घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005** ने पीड़ित महिलाओं को न्याय का द्वार और संरक्षण का कवच प्रदान किया है। इन कानूनों की बदौलत अनेक मामलों में पीड़िताओं को न्याय मिला है, दोषियों को दंडित किया गया है, तथा समाज को भी यह संदेश मिला है कि पत्नी के साथ मार-पीट या दहेज प्रताड़ना अब "निजी मामला" न होकर एक दंडनीय अपराध है। विशेष रूप से, पीडब्लूडीवीए, 2005 ने महिलाओं को वैवाहिक गृह में रहने का अधिकार और उत्पीड़क से बचाव हेतु त्वरित प्रतिबंधात्मक आदेश दिलाकर *तत्काल राहत* उपलब्ध कराने की जो मिसाल पेश की, वह सराहनीय है।

दूसरी ओर, अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ हासिल करना शेष है। *कानून के प्रयोग में संतुलन* बनाना एक नाज़ुक बिंदु है – जहाँ एक तरफ़ झूठे आरोपों से निर्दोष परिवार न फँसे, वहीं दूसरी तरफ़ वास्तविक पीड़ित न्याय से वंचित न हो। सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट द्वारा समय-समय पर दिए गए दिशा-निर्देश इस संतुलनकारी प्रयास का हिस्सा हैं। फिर भी, कड़े कानून होने के बावजूद घरेलू हिंसा की घटनाएँ संख्या में कम नहीं हो रही हैं, जो इंगित करता है कि समस्या की जड़ें सामाजिक संरचना और मानसिकता में हैं। इसलिए कानून केवल *आखिरी उपाय* (last resort) उपलब्ध कराते हैं; वास्तविक समाधान के लिए समाज में महिलाओं के प्रति आदर, समानता और अहिंसा के मूल्यों को मजबूत करना होगा।

नीति-निर्माताओं को मौजूदा कानूनों के क्रियान्वयन को सुधारने पर सबसे अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए। प्रत्येक ज़िले में प्रशिक्षित संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति, पुलिस और न्यायिक अधिकारियों के लिए लैंगिक संवेदनशीलता प्रशिक्षण, तथा पीड़िता सहायता तंत्र (वन-स्टॉप केंद्र, महिला हेल्पलाइन, कानूनी सहायता प्रकोष्ठ आदि) का सुदृढ़ संचालन सुनिश्चित किया जाए। साथ ही, विधि में समयानुकूल संशोधन भी विचाराधीन रहें – उदाहरणतः 498क को समझौता-योग्य बनाकर वैवाहिक विवादों में सुलह की संभावना को औपचारिक रूप देने पर विचार किया जा सकता है[19], तथा सबसे बढ़कर, वैवाहिक बलात्कार को अपराध की परिधि में लाने जैसे लंबित सुधार शीघ्र करने की आवश्यकता है ताकि महिलाओं की शारीरिक स्वायत्तता को पूर्ण कानूनी संरक्षण मिल सके।

अंततः, घरेलू हिंसा उन्मूलन के लिए बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता है। विधिक उपाय, प्रशासनिक दक्षता, सामुदायिक जागरूकता और पुरुषों की मानसिकता में परिवर्तन – इन सभी मोर्चों पर समवेत प्रयास करने से ही सकारात्मक परिणाम सम्भव होंगे। क़ानून ने आधार प्रदान कर दिया है, अब समाज को उस पर अमल करना है। जब तक हर घर में महिलाओं को सम्मानपूर्वक व भयमुक्त जीवन नहीं मिलता, तब तक कानूनी सुधारों और सतर्क प्रवर्तन की प्रक्रिया जारी रखनी होगी। इस अध्ययन के आलोक में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि घरेलू हिंसा के विरुद्ध संघर्ष केवल एक क़ानूनी मुद्दा नहीं, बल्कि हमारे सामाजिक विकास का भी सूचक है – और इस पथ पर भारत ने प्रगति तो की है, लेकिन मंज़िल तक पहुँचने के लिए निरंतर सतर्कता, सुधार एवं संवेदनशीलता अपेक्षित है।

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****

[19] **विनीत उपाध्याय**, *"Debate Over 498A Misuse Grows Louder"*, *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* (दिल्ली संस्करण), 15 जून 2025: दिल्ली की अदालतों में 2021-24 के दौरान 498क के मुकदमों में मात्र 0.2% मामलों में दोषसिद्धि, लगभग आधे मामलों में आरोप उच्च न्यायालय द्वारा रद्द; 498क को समझौता-योग्य बनाने जैसे सुधारों पर चर्चा।